सतलुज के हमसफर

मलविन्दर जीत सिंह वढ़ैच•

फांसी लगने से तीन दिन पूर्व 20 मार्च 1931 को तीनों (सुख देव, भगत सिंह और राज गुरू) ने पंजाब के राज्यपाल को एक पत्र भेजा था, जिसका सार इस प्रकार है – "यह इंकलाबी संघर्ष जिसमें हम शामिल हुए हैं, न हमसे शुरू हुआ है और न ही हमारे मिट जाने से समाप्त होगा अतएव जब तक असमानता व गुलामी पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाती, यह संघर्ष निरन्तर जारी रहेगा। चिट्ठी का मुख्य मुद्दा यह था कि तुम्हारी अदालत ने हमें बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने का आरोपी मानकर फांसी की सजा सुनाई है। यदि तुम सचमुच ही, अपनी अदालत के कानून की पालन कर रहे हो तो हमें जंगी कैदी होने की हैसियत से फांसी पर न चढ़ाकर गोलियों से उड़ा दें।

सुख देव, भगत सिंह व राज गुरू

23-24 मार्च 1931 की अंधेरी और सुनसान रात को तीन आजादी प्रेमियों का चोरी-छिपे सतलुज नदी के किनारे सामूहिक अंतिम संस्कार करते हुए, बेदर्द जालिमों ने यह सोचा भी नहीं होगा कि जहां हम इनको फांसी देकर हमेशा के लिए अमर कर रहे हैं, वहां अपनी 200 वर्ष पुरानी सल्तनत का भी अंत करने जा रहे हैं और जिसकी अंतिम क्रिया केवल डेढ़ दशक में ही सम्पन्न हो गई।

पहले जन्म होता है सुख देव का 19 फरवरी 1907 को, लुधियाना शहर के नौघरा मुहल्ले में माता श्रीमती रल्ली देवी व पिता लाला राम लाल थापर के घर में। जब ये अभी केवल तीन वर्ष के ही थे तो इसके पिता का देहांत हो गया, जिस उपरान्त, वे लायलपुर (अब फैसलाबाद, पाकिस्तान) अपने ताया जी, लाला अचिन्त राम के पास ही रहे, जहां इनकी मुलाकात भगत सिंह के साथ हुई। भगत सिंह का जन्म सुख देव के जन्म से लगभग 7 महीनों के उपरांत दिनांक 28 सितम्बर 1907 को गांव चक्क नं. 105, बंगा, जिला लायलपुर में माता श्रीमती विद्यावती व पिता सरदार किशन सिंह के घर में हुआ; और इन दोनों के पीछे 'भाई काहला जी' अर्थात शिव राम हरि राज गुरू का जन्म दिनांक 24 अगस्त 1908 को माता श्रीमती पार्वती बाई व पिता श्री हरी राज गुरू के घर, गांव खैड़ (अब राज गुरू नगर), पूना (महाराष्ट्र) में हुआ।

लायलपुर इलाके की निर्जन धरती को उपजाऊ बनाया उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में बनवाई गई नहरों ने, जिनका निर्माण अंग्रेज हाक्मों ने अपने देश के कारखानों में कपास जैसे कच्चे माल की पूर्ति के मद्देनजर किया था। अत: बड़ी संख्या में किसान अपनी पैतृक गांवों की संकीर्ण मालकी से तंग आकर अपने

• **गाँव व डाकघर सकेतड़ी, जिला पंचकुला 134001; फोन: (0172) 2556314**
ईमेल: mjswaraich29@gmail.com; फेसबुक: Malwinder Jit Singh Waraich

परिवारों सहित लायलपुर में आकर बस गए, जिनमें गांव खटकड़ कलां, जिला जालन्धर का निवासी सरदार अर्जन सिंह भी सम्मिलित था और उनके साथ उसके बेटे स. किशन सिंह (भगत सिंह के पिता) भी थे। इस निर्जन भूमि ने जहां साम्राज्यी कारखानों की गोद हरी करने में योगदान डाला, वहां साथ ही यह खत्म हो रही नर्सरी के लिए भी उपजाऊ सिद्ध हुई। 1905 में अंग्रेजी सरकार की बंगाल के बंटवारे के दौरान 'फूट डालो राज करो' की चाल को समझते हुए पहली बार विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध देश व्यापी जन आन्दोलन की शुरूआत हुई। पंजाब में विदेशी सरकार के विरुद्ध पहली बार लोगों के रोष का आरम्भ वर्ष 1906-07 में हुआ, जब अंग्रेजी हुकूमत ने निर्जन जमीनों के अधिकार किसानों से छीन लेने का कानून बनाया।

इस चक्रवात की लपेट से बचने के लिए भगत सिंह के पिता को फरार होकर नेपाल में जाना पड़ा, जबकि भगत सिंह के बड़े चाचा, सरदार अजीत सिंह को गिरफ्तार करके देश निकाला देकर बर्मा में नजरबंद कर दिया गया और उनके छोटे चाचा, सरदार स्वर्ण सिंह को बन्दीखाने में डाल दिया गया।

इस क्रान्ति के दौर में क्रान्ति का केन्द्र बिन्दु, भाव लायलपुर की उपजाऊ धरती में पालन-पोषण हुआ सुख देव और भगत सिंह का। बेशक यह सब कुछ इनके होश संभालने से पहले ही घट चुका था, किन्तु इस दौर के संघर्ष के चिन्ह अभी अलोप नहीं हुए थे तथा 'पगड़ी संभाल ओए जट्टा' के गीत की दिल को हिलाने वाली गूंज अब भी न केवल लोगों के हृदयों पर छाई हुई थी, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर सहजे ही आ जाती थी।

दूसरी ओर पूना की धरती से जहां उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में तीन चापेकर वीरों – दमोदर, बाल कृष्ण, वासुदेव और उनके एक नजदीकी साथी रानेडे ने शहादत की परम्परा डाली थी, वहीं गदर लहर के दौरान शहीद करतार सिंह सराभा व उनके साथी विष्णु गणेश पिंगले ने पंजाब-महाराष्ट्र की शहीदी परम्परा के ऊपर फूल चढ़ाए थे। उसी पूना की धरती से शिव राम हरि राज गुरु पहुंच जाते हैं, प्रसिद्ध धार्मिक शहर बनारस में, गतका मास्टर के रूप में। फिर जब क्रान्तिकारी पार्टी को दिल्ली में 'ऐक्शन' के लिए एक क्रान्तिकारी साथी की पड़ी तो किसी भरोसेयोग्य साथी की निशानदेही पर शिव वर्मा जा पहुंचते हैं बनारस में, तथा वहां से बुला लाते हैं शिव राम को अपने डी.ए.वी. कॉलेज के हॉस्टल कानपुर में। यह हॉस्टल भी क्रांतिकारियों के ठहरने व छुपने का एक स्थान ही था, जहां भगत सिंह, सुख देव व अन्य फरार साथी आश्रय लिया करते थे। फिर क्या था कुछ ही दिनों में पूना के इस 'सतौड़' मेहमान की जैसे वहां धूम ही मच गई और तो और वह खाना भी रजाई में ही खा लिया करता था।

सन् 1929 के आरम्भ में जब आगरा में क्रान्तीय विचार-चर्चा चल रही थी तो एक दिन लगभग सभी साथी एक-दूसरे को मजाक करने लगे व मजाक का विषय था – 'कौन कैसे पकड़ा जाएगा और पकड़े जाने पर क्या करेगा?'

यह हजरत (राज गुरू) तो सोते हुए ही पकड़े जाएगे। इनकी आंख हवालात में ही खुलेगी और यह पहरेदार से पूछेंगे – "क्या मैं सचमुच ही पकड़ा गया हूं या सपना देख रहा हूं!" ...और हुआ भी लगभग ऐसे ही, जनाब 30 सितम्बर 1929 की रात को 3 बजे सोये हुए ही, प्लाट नं. 20, तिलक रोड़, पूना से असले समेत गिरफ्तार हुए। हां, जब उनको पहली बार अक्टूबर 1929 को लाहौर के स्पेशल मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस ने रिमांड लेने के लिए पेश किया, तो मजिस्ट्रेट ने इन्हें देखते ही टिप्पणी की, "नाम तो तुम्हारा राज गुरू है और इल्जाम तुम पर यह है!" "हां, मेरा काम है राजा को शिक्षा देना", जवाब था राज गुरू का।

इसी तरह भगत सिंह के बारे में कि वे किसी सिनेमाघर में पकड़े जाएंगे। पकड़े जाने पर पुलिस वालों को कहेंगे, जी हां यदि हमें पकड़ लिया तो कौन सा गजब हो गया। फिल्म तो पूरी देख लेने दो। ...

खैर, उन्होंने तो दिल्ली असेंबली में 8.4.1929 को बी.के. दत्त के साथ आत्म स्मपर्ण किया, किन्तु फिल्म के शौक ने इनको सांडर्स के कत्ल से बिल्कुल पहले भाव 17.12.1928 की पिछली रात 'काकोरी डे' समागम से परतते हुए 'टॉम काका की कुटिया' देखने की इतनी जबरदस्त इच्छा हुई कि इन्होंने अपने साथी भगवान दास माहौर से जबरदस्ती रात के खाने के लिए रखी हुई चबन्नियां (प्रत्येक आदमी एक चबन्नी – 25 पैसे की एक चबन्नी) छीनकर सिनेमाघर में जाकर फिल्म की टिकट खरीदी और फिल्म देखकर ही रात को उन्हें नींद आई।

बाकी रही बात सुख देव की, पता नहीं किस कारण इनके बारे में कोई ऐसी भविष्यवाणी नहीं की गई थी। हां, भगत सिंह ने आजाद को हंसी-मजाक करते हुए कहा, "पंडित जी! पकड़े जाने पर तुम्हारे लिए तो दो रस्सों की जरूरत पड़ेगी।" इस पर आजाद बोले, "देख, फांसी पर चढ़ने का शौक मुझे नहीं है। वह तुझे मुबारक, रस्सा-फस्सा तेरे गले के लिए हैं। जब तक यह 'बमतुल बुखारा' (माउजर पिस्तौल) मेरे पास है, किसने मां का दूध पिया है, जो मुझे जिन्दा पकड़ ले जाए।"

आगरे में अपने निवास के दौरान सभी साथी कभी-कभी शाम को सैर करते हुए ताज महल पहुंच जाते थे। एक बार जब राज गुरू वहां से परते तो उनको शायरी का इतना शौक चढ़ा कि उन्होंने कागज-पेन्सिल लेकर एक शेयर लिख डाला:

"अब तक नहीं मालूम था इश्क क्या चीज है,
रोजे को देख मेरे भी इश्क ने बलवा किया।"

विजय कुमार सिन्हा तो 'इश्क ने बलवा किया, इश्क ने बलवा किया' चीखकर उछल पड़े, जबकि दत्त इनका मुंह देखते रह गए। इतने में भगत सिंह ने अपनी जेब में से पिस्तौल निकाला और नाली की तरफ से पकड़ कर राज गुरू की ओर हाथ बढ़ाकर कहने लगे, "तूने मुझे जिन्दा नहीं रहने देना तो ले मार दे, नहीं तो यह वायदा कर कि फिर कभी शेर, चीता, भेड़िया, कुत्ता कुछ नहीं बनाएगा।" बेचारे राज गुरू आश्चर्यचकित रह गए। फिर शायद ही उन्होंने हिन्दी या हिन्दोस्तानी में कभी को रचना रची हो।

उधर सुख देव और उसके पक्के मित्र भगत सिंह का एक अन्य 'शुगल' था लाहौर की प्रसिद्ध द्वारका दास लाइब्रेरी में उनकी ही आयु के लाइब्रेरीयन, राजा राम शास्त्री को छेड़ना और तंग करना। लगभग आधी रात को शास्त्री जी के छोटे व तंग कमरे का दरवाजा खटखटाना और दरवाजा खुलते ही बूट आदि खोलकर शास्त्री के बिस्तरे पर उसके दोनों ओर पहले टिककर बैठ जाना व फिर लेट जाना, जिससे तंग आकर शास्त्री का चारपाई से उतरकर नीचे लेट जाना। मेहमानों ने एक-दूसरे को मस्करी करते हुए संबोधित करना, "इस में जरा सा भी शक नहीं कि कि राजा राम अपने मित्रों (भाव हमें) को कितना प्यार करता है। बेचारा!" यह सुनते-सुनते राजा राम ने आग बबुला होकर कहना, "देखो, एक तो तुमने मेरा बिस्तर छीन लिया, ऊपर से मस्करियां कर रहे हो।" इतने में मेहमानों में से एक ने कहना, "भाई समाजवाद कहता है कि मिलकर आनन्द लो।" फिर चारपाई को एक तरफ खड़ाकर तीनों नीचे हर खर्राटे मारने लग जाते। इसी तरह ही राजा राम के होटल में रोटी खाते समय दोनों उसके इर्द-गिर्द बैठकर उसकी थाली में से ही रोटी खाते जाते और साथ ही खीर के आदेश पर आदेश देते जाते।

अप्रैल 1929 में क्रान्तिकारी पार्टी ने असेंबली में बम धमाका करके बड़ा 'ऐक्शन' करना था, किन्तु जब राज गुरू को यह पता चला कि भगत सिंह के साथ बी.के. दत्त जा रहा है तो उस 'सतौड़' की तो जैसे नींद ही उड़ गई, क्योंकि सभी साथियों का मत था कि असेंबली ऐक्शन के बाद दोषियों को फांसी की सजा होगी। राज गुरू को हमेशा ही यह अंदेशा रहता था कि भगत सिंह उससे चालाकी करके पहले फांसी पर चढ़ जाएगा, इसलिए वह दौड़ा-दौड़ा सिफारिश करवाने के लिए आजाद के पास पहुंचा। जब उसको

बताया गया कि आत्म स्मर्पण करने के उपरांत अदालती बयान अंग्रेजी में ही देना है, तो राज गुरू ने दलील दी कि मुझे चाहे कितना ही लम्बा बयान अंग्रेजी में लिखकर दे दो, मैं उसको तोते की तरह रट्ट लूंगा। किन्तु जब उसकी दौड़-धूप व दलील काम न आई और इसे लगा कि जैसे भगत सिंह इससे बाजी मार गया हो तो वह निराश होकर पूना चला गया। यह अलग बात है कि इससे पहले, भाव 17 दिसम्बर 1928 को सांडर्स कत्ल के ऐक्शन के दौरान, कत्ल की जिम्मेवारी भगत सिंह को सौंपी गई थी तथा राज गुरू को केवल भगत सिंह की रक्षा ही करनी थी, किन्तु 'भाई काहला' गोली चलाने से अपने आप को रोक न सका और देखते ही उसने सांडर्स पर गोली चला दी।

उधर पार्टी, भगत सिंह की कुर्बानी देना नहीं चाहती थी तथा सेंट्रल कमेटी ने भी मीटिंग में ऐसा ही फैसला लिया था। कमेटी की मीटिंग के दौरान सुख देव वहां शामिल नहीं था, अतएव जब सुख देव को कमेटी द्वारा लिए गए फैसला का पता लगा तो वह तुरन्त दिल्ली पहुंचा व अपने प्यारे मित्र भगत सिंह से तथ्यों सहित तर्क-वितर्क करते हुए उसे मजबूर किया कि वह कमेटी से खुद को भेजे जाने की मोहर लगवाए व हुआ भी ऐसे ही – धन्य है ऐसी मित्रता व धन्य है ऐसा साथ!

सुख देव का 'आत्मिक' गुण यह था कि वह 'परिवार' के 'कर्ता-धर्ता' की तरह हरेक साथी की छोटी से छोटी जरूरत को हमेशा याद रखता था और उनको पूरा करने के लिए भरसक प्रयास करता था। वह साधन जुटाने व समस्या का समाधान करने का धनी था, जिसका मुख्य उदाहरण यह है – भगत सिंह, राज गुरू और आजाद को सांडर्स के कत्ल के बाद लाहौर से ऐसे बाहर निकाला जैसे मक्खन में से बाल निकालते हैं। पैसे मांगे दुर्गा 'भाभी' सुपत्नी भगवती चरण वोहरा से, तथा 'इस वीरांगना' ने न केवल अपनी बल्कि अपने तीन वर्ष के बेटे की जान भी खतरे में डालकर, भगत सिंह की पत्नी का नाटक खेलकर 20 दिसम्बर को, राज गुरू समेत गाड़ी पकड़कर लाहौर से निकाला। इस सारी योजना के पीछे सुख देव का ही दिमाग था। उधर आजाद को अपनी माताजी, धर्म बहन और (पंडित) किशोरी लाल सहित 25 दिसम्बर 1928 को मथुरा भेज दिया। सुख देव के ऊपर जत्थेबंदक तौर पर, लाहौर साजिश केस के जजों ने यह टिप्पणी की थी – **साजिश का 'दिमाग' यही था और भगत सिंह इसके दायें बाजू जैसा था।**

सुख देव की गिरफ्तारी 15 अप्रैल 1929 को लाहौर की कश्मीर बिल्डिंग में स्थित 'बम फैक्टरी' से हुई थी, क्योंकि अल्मारी में एक 'लाईव बम' पड़ा हुआ था। इसने सूझ-बूझ से काम लेते हुए, पुलिस पार्टी को इस बारे में सुचेत कर दिया था।

गिरफ्तारी के बाद जेली जीवन के दौरान इस जत्थेबंदी ने अपने 'अमलों द्वारा प्रचार' वाली रणनीति अनुसार, राजनैतिक कैदियों के लिए सम्मानजनक सुख-सहुलियतों व उचित व्यवहार के लिए लम्बी भूख-हड़तालें की गई व भयंकर कष्ट हंसते हुए सहन किए। इस दौरान इनका अनमोल साथी, 'बम मास्टर' जतिन दास भूख हड़ताल के 63वें दिन अपनी जान देश पर न्यौछावर कर गया।

अन्त में जैसा कि पहले ही स्पष्ट दिखाई दे रहा था, 7 अक्टूबर 1930 को बादशाह के विरुद्ध विद्रोह छेड़ने और सांडर्स के कत्ल के लिए भगत सिंह व राज गुरू को प्रमुख रूप से जिम्मेवार मानकर और सुख देव को इस साजिश के 'रचनाकार' के आरोप में फांसी की सजाएं सुनाई। अगले चार-पांच महीने कानूनी तथ्यों पर आधारित याचिकों को डालने में बीत गए। **क्रान्तिकारी तो अपनी ओर से किसी प्रकार की अपील दायर करने का सपना तक भी नहीं देखते थे, किन्तु नेक दिल वकीलों ने अपने तौर पर स्पेशल ट्रिब्यूनल वाले 'आरडीनैंस', जोकि 1915 वाले गदरी मुकदमों की तरह 'न वकील, न दलील, न अपील' का ही दूसरा स्वरूप था, को इस आधार पर चुनौती दी कि ऐसा काला कानून सिर्फ अमरजैंसी जैसे हालात (आपात्तकाल स्थिति) में ही लागू किया जा सकता है, जबकि ऐसी**

स्थिति प्रकट होने का कहीं भी कोई चिन्ह नहीं था।

दूसरी ओर देश में इनकी फांसी को लेकर सरकार तूफान उठने के पहले दिन से ही घबराई हुई थी, जिसकी पेशबंदियों का उल्लेख दिसम्बर 1930 की सरकारी मिस्लों में मिलता है। पंजाब और खासकर पंजाब के शहर लाहौर में तो ऐसा लगता था कि जनता का सैलाब कहीं जेल को ही न ध्वस्त कर दे। इसलिए 17-18 मार्च की रात को पंजाब सरकार के सुझाव पर यह फैसला लिया गया कि इन तीनों को घोषित दिनांक से पहले, भाव 24 मार्च 1931 की बजाय 12 घण्टे पहले ही ही फांसी दे दी जाए व जिसकी घोषणा 24 मार्च सवेरे तक नहीं की जाए।

नियमों के अनुसार, फांसी से एक दिन पहले इनके परिवारों से आखिरी मुलाकात, जो कि 23 मार्च को सवेरे होना निश्चित थी भी न हो सकी, क्योंकि जेल अधिकारी केवल 'प्रथम श्रेणी' के रिश्तेदारों – भाव मां-बाप, भाई-बहन को ही मुलाकात की स्वीकृति दे रहे थे तथा दूसरे रिश्तेदारों – भाव भगत सिंह की चाचियों, दादा-दादी, सुख देव के पितातुल्य ताया, लाला अचिन्त राम जी, आदि, को इस मुलाकात से वंचित रखने पर अंडिग थे। जेल अधिकारियों की इस ज्यादती के विरुद्ध तीनों (भगत सिंह, सुख देव व राज गुरू) के परिवारों ने इस मुलाकात का पूरी तरह बहिष्कार कर दिया। **राज गुरू की माता जी, जो कि पूना से इसी आशय के लिए आए थे, उन्होंने ने भी बेटे का आखिरी समय मुंह देखने का संकल्प त्याग दिया।**

इन शहीदों के साथियों की इनके साथ आखिरी मुलाकात दिसम्बर 1930 में ही हो चुकी थी, जब उम्र कैद व कम कैद की सजाओं वाले साथियों का स्थानांतरण करके लाहौर जेल से देश की दूसरी जेलों में भेज दिया गया था। इनके नजदीकी साथी, शिव वर्मा अनुसार, "जेल का बड़ा दरोगा (थानेदार) अपने पूरे संगठित सैनिकों सहित हमें साथ लेकर फाटक की ओर चल पड़ा। कुछ दूर चलकर उसने पूछा, 'अपने साथियों को मिलोगे?' हमने इस स्नेह के लिए उनका धन्यवाद दिया और उसने फांसी वाले अहाते का फाटक खुलवाकर हमें भगत सिंह, राज गुरू व सुख देव की कोठड़ियों के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। जिन्दगी में ये साथी दुबारा देखने को नहीं मिलेंगे, इस सोच के साथ हमारे चेहरे उदास थे। उनसे अन्तिम विदाई लेकर जब हम चलने लगे तो हम में से एक साथी, जयदेव कपूर ने भगत सिंह से पूछा, 'सरदार तुम शहीद होने जा रहे हो; मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम्हें इसका अफसोस तो नहीं है?' सवाल सुनकर पहले तो सरदार ठहाका मार के हंसा और फिर गंभीर होकर कहने लगा, **'क्रान्ति के रास्ते पर कदम रखते समय मैंने सोचा था कि यदि मैं अपना जीवन देकर देश के कोने-कोने तक 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा पहुंचा सकूं तो मैं समझूगा कि मुझे अपने जीवन का मूल्य मिल गया है। आज फांसी की इस कोठरी में लोहे की सलाखों के पीछे भी मैं करोड़ों देशवासियों के मुंहों से गूंजती उस नारे की आवाज सुन सकता हूं। मुझे विश्वास है कि मेरा यह नारा आजादी के संघर्ष की गतिशील शक्ति के रूप में साम्राज्यवादियों पर चोट करता रहेगा।'** फिर कुछ रुककर अपनी स्वभाविक मुस्कराहट में उसने कहा, **'इतनी छोटी उम्र का मूल्य और हो भी क्या सकता है?'"**

भगत सिंह के जेली जीवन के दौरान बोघा नामक एक 'सेवक' उनकी कोठरी साफ करता था। उसे भगत सिंह स्नेह से 'बेबे' पुकारा करते थे, जैसे वे अपनी माता जी को बुलाते थे – भाव यह था कि जैसे शिशु अवस्था में मेरी माता जी ने मेरा मल-मूत्र उठाया था उसी तरह अब यह बोघा कर रहा था। 23 मार्च के दोपहर से कुछ समय पहले जेल के दरोगा (थानेदार) ने भगत सिंह से पूछा कि आज कोई खास फरमाईश? भगत सिंह ने कहा कि आज 'बेबे' के हाथ की रोटी खाने को मन करता है।" जेलर ने कहा कि अभी गांव को संदेश भेजता हूँ। तो भगत सिंह ने टोकते हुए कहा, "नहीं, मेरी 'बेबे' तो यहां पर ही है।"

भेद खुला तो बोघा को भगत सिंह के पास भेजा गया। इस दृश्य को प्रसिद्ध नाटककार दविन्द्र दमन ने अपने नाटक 'छिपण तो पहलां' बड़े शानदार ढंग से पेश किया है:

बोघा: मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताओ।

भगत सिंह: सेवा तो है यदि मानो तो।

बोघा: तू मुहं से तो बोल यदि मेरे करने की हुई, मेरे बस की हुई।

भगत सिंह: अपने हाथ की पकी हुई रोटी खिला दे।

बोघा (उल्झन में उसकी की ओर देखता ही रह जाता है और फिर हां में सिर हिलाता है – फिर टोकरी और झाड़ू उठा लेता है। कोठरी के दरवाजे तक जाता है। रुकता है, फिर मुड़कर भगत सिंह की ओर देखता है) आज शाम को जब ड्यूटी पर आऊंगा तो पकाकर ले आऊंगा। (आंखों को पोंचकर चला जाता है और भगत सिंह उसकी ओर देखकर मुस्कराता है)....

किन्तु शायद... शायद... बोघा के ड्यूटी पर आने से पहले ही बोघा का सरदार जा चुका होता है.... सदा के लिए... हमेशा के लिए...।

ऐसा चेकोस्वाकिया के एक अन्य शहीद, जूलियस डयूक अपनी अन्तिम दस्तावेज 'फांसी के तख्ते से' में दुनिया से विदाई के अंदाज को इस प्रकार व्यक्त करता है:–

"मैं जिन्दगी को प्यार करता हूँ और इसकी खूबसूरती को बचाने के लिए संग्राम कर रहा हूं। हे मेरे देशवासियों मैं तुम्हें प्यार करता हूं, किन्तु जब तुम मेरे प्यार को अस्वीकृत कर देते थे तो मैं चिढ़ जाता था। मैं दु:खी होता था, जब तुम मुझे गलत समझते थे। यदि मैंने तुम्हें किसी को कोई ठेस पहुंचाई हो तो मुझे माफ कर देना। तुम जिनको मैंने खुशी दी वे मुझे भूल जाएं। सुस्ती कभी भी मेरे नाम के साथ नहीं जोड़ी जाए। यह मेरी आखिरी वसीयत है – तुम्हारे लिए, मेरे माता-पिता और तेरे (मेरी गस्तीना – पत्नी), तुम्हारे लिए मेरे साथियों, और उन सबके लिए जिनको मैं प्यार करता हूं। यदि तुम समझते हो कि आंसू गम की मिट्टी धो सकते हैं तो थोड़ा सा रो लेना, किन्तु अफसोस कभी मत करना। **मैं खुशी के लिए जिन्दा रहा, खुशी के लिए मर रहा हूँ। गम के फरिश्ते को मेरी कब्र पर बिठाना बे-इन्साफी होगी।"**

.....